जैन एवं बौद्धधर्म

डॉ. कोमलचन्द्र जैन

श्रमण संस्कृति की दो प्रमुख धाराएँ आज भी भारतीय संस्कृति में अपने प्रभावशाली अस्तित्व के साथ प्रवाहित हैं। उनमें से एक धारा जैनधर्म के रूप में तथा दूसरी धारा बौद्धधर्म के रूप में पाँच व्रतों तथा पाँच शीलों का उपदेश जन-कल्याण के लिए दे रही है।

जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में अनेक समानताएँ है। इन्हीं समानताओं के आधार पर प्रो. लासेन आदि विद्वानों ने बुद्ध एवं महावीर को एक ही व्यक्ति बता दिया। कुछ समय बाद प्रो. वेबर ने यह खोज की कि महावीर एवं बुद्ध दो अलग-अलग व्यक्ति थे, किन्तु जैनधर्म बौद्धधर्म की एक शाखा मात्र है। इस खोज से जैनधर्म को पृथक् धर्म न मानकर कुछ दिनों तक बौद्धधर्म की शाखा मात्र माना गया। अन्त में प्रो. याकोबी ने उक्त मत का खण्डन करते हुए यह सिद्ध किया कि जैनधर्म बौद्धधर्म से पृथक् न केवल स्वतन्त्र धर्म है, अपितु वह बौद्धधर्म से प्राचीन भी है। बुद्ध के समकालीन महावीर तो जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर मात्र थे। उक्त मतों से जहाँ यह सिद्ध होता है कि जैनधर्म एक स्वतन्त्र एवं बौद्धधर्म से प्राचीन धर्म है, वहीं यह भी प्रमाणित होता है कि इन दोनों धर्मों में अनेक समानताएँ हैं, अन्यथा प्रो. लासेन एवं प्रो. वेबर को एकत्व का भ्रम न होता।

अब प्रश्न यह है कि वे कौन-सी समानताएँ हैं जिनके आधार पर कुछ विद्वानों को भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध में एकत्व का भान हुआ तथा कुछ को जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा मात्र प्रतीत हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उन समानताओं को दृष्टि में रखकर यदि दोनों धर्मों का अध्ययन किया जाए तो श्रमण संस्कृति का एक सुन्दर रूप उपस्थित हो सकता है। दुर्भाग्यवश इन दोनों धर्मों में निहित असमानताओं को महत्त्व देते हुए उन धर्मों का अध्ययन किया जाता है। फलस्वरूप ये दोनों धर्म न केवल एक-दूसरे से असम्बद्ध प्रतीत होते हैं, अपितु विरोधी भी लगते हैं। इन दोनों धर्मों का जो व्याख्यापरक साहित्य है उसमें असमानता को ही प्रमुख आधार बनाकर एक दूसरे का खण्डन किया गया है। परिणाम स्वरूप जब जैनधर्म एवं बौद्धधर्म से अनभिज्ञ कोई जिज्ञासु पाठक दोनों धर्मों के व्याख्यापरक साहित्य को पढ़ता है तो वह यही निष्कर्ष निकालने के लिए विवश हो जाता है कि ये दोनों धर्म न केवल एक दूसरे के प्रतिकूल हैं अपितु भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध स्वयं सैद्धान्तिक मतभेद रखते थे। और जब इस प्रकार के निष्कर्ष प्रकाशित किये जाते हैं तो उससे श्रमण संस्कृति की छवि धूमिल ही होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्नता में एकता की खोज की जाए और उसी एकता के सूत्र में बंधकर श्रमण संस्कृति के आदर्शों को जन-जन तक पहुँचाया जाए। श्रमण संस्कृति के समान एवं लोकोपयोगी सिद्धान्तों के आधार पर श्रमण संस्कृति का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया जाए, जिसमें भेद की गन्ध न आए, अपितु एकता की सुरभि से जन साधारण का मानस शान्ति एवं सुख की अनुभूति करे। इसी भावना से प्रेरित होकर यहाँ जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में निहित जन-कल्याण से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तों पर सरसरी दृष्टि डाली जा रही है।

श्रमण के लिए प्राकृत एवं पालि में समण शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। समण शब्द का सामान्य अर्थ साधु है। जैनधर्म एवं बौद्धधर्म दोनों में ही श्रमण या साधु या भिक्षु की तीन विशेषताओं को महत्त्व दिया गया है। पहली विशेषता है परिश्रम करना। परिश्रम का अभिप्राय तपस्या से है। अतः दोनों ही धर्मों में व्यक्ति तपस्या या साधना से संसार-चक्र से मुक्ति रूप अपने उत्कर्ष को प्राप्त करता है। दूसरी विशेषता है समभाव रखना। दोनों ही धर्मों में साधु या भिक्षु को प्राणिमात्र के प्रति समभाव रखने का बार-बार उपदेश दिया गया है। साधु या भिक्षु तभी अपनी उत्कर्ष अवस्था को प्राप्त कर सकता है जब वह राग एवं द्वेष की भावना से ऊपर विश्वप्रेम या विश्वबन्धुत्व का प्रतीक बन जाए। तीसरी विशेषता है शान्त करना। साधु या भिक्षु के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी तपस्या से मन की अकुशल वृत्तियों का शमन करे। अतः जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में श्रम, सम एवं शम को उत्कर्ष के लिए समान महत्त्व प्रदान किया गया है।

इसी प्रकार संसार एवं संसार के कारण में भी दोनों धर्मों में समानता दृष्टि-गोचर होती है। दोनों ही धर्मों में ईश्वर की प्रभुता का सिद्धान्त मान्य नहीं है तथा कर्म सिद्धान्त को महत्त्व प्रदान किया गया है। इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ जैन-धर्म में आध्यात्मिक रूप को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है वहीं बौद्धधर्म में व्यावहारिक रूप को। इसी कारण दोनों धर्मों के अहिंसा के सिद्धान्तों में भी अन्तर है। जैनधर्म के अनुसार व्यक्ति जब किसी की हिंसा का संकल्प करता है तभी वह हिंसा जन्य पाप से कलुषित हो जाता है किन्तु बौद्धधर्म में व्यक्ति तभी हिंसा के पाप से दूषित होता है जब वह हिंसा का विचार करता है फिर हिंसा करता है और हिंसा करने के बाद पश्चात्ताप नहीं करता है। दूसरे शब्दों में बौद्धधर्म के अनुसार हिंसा वहीं मानी जाती है जहाँ आधुनिक भारतीय संविधान की धारा ३०२ लागू होती है। जैसे हिंसा का प्रयत्न करने वाले किन्तु हिंसा के प्रयत्न में असफल रहने वाले व्यक्ति को धारा ३०२ के अन्तर्गत दण्ड न देकर धारा ३०७ के अन्तर्गत दण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया जाता है वैसे ही हत्या के प्रयत्न में लीन किन्तु हत्या में असफल व्यक्ति हिंसा के पूर्ण पाप को प्राप्त नहीं करता है।

जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में भेद का प्रमुख आधार आत्मा सम्बन्धी मान्यता है। जैनधर्म में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व माना गया है तथा उसकी मुक्ति का उपाय भी प्रतिपादित है। किन्तु बौद्धधर्म में आत्मा की चर्चा उपलब्ध नहीं होती है। बौद्ध, दर्शन के ग्रन्थों में तो आत्मा के अस्तित्व का विभिन्न तर्कों के आधार पर खण्डन भी उपलब्ध होता है। इससे जैनधर्म एवं बौद्धधर्म के परस्पर विरोधी होने का आभास मिलता है। किन्तु यदि आत्मा सम्बन्धी भगवान् बुद्ध के विचारों पर ध्यान दें तो एतद् विषयक विरोध सरलता से दूर हो जाता है।

भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशों में कहीं भी आत्मा के अस्तित्व का खण्डन नहीं किया है। जब उन्होंने देखा कि आत्मा के सिद्धान्त की ओट लेकर वैदिक संस्कृति में नाना अनर्थ हो रहे हैं। भोग की प्राप्ति के लिए हिंसा तथा शोषण बढ़ता जा रहा है तथा कुछ लोग अपने भौतिक स्वार्थ के वशीभूत होकर **'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'** का नारा बुलन्द कर रहे हैं। एक अदृश्य सत्ता के लिए आदमी इतना पागल हो गया है कि उसकी दृष्टि में दूसरे प्राणियों का कुछ भी महत्त्व नहीं रहा है। क्रियाकाण्ड का इतना अधिक बोलबाला हो गया कि हजारों निरीह मूक पशुओं की यज्ञ में आहुति दे देना एक अच्छा कार्य माना जाने लगा तब उन्होंने जनसाधारण का ध्यान आत्मा के सिद्धान्त से उत्पन्न पागलपन से हटाने के लिए व्यावहारिक सदाचरण की आवाज उठायी। जब बुद्ध से पूछा जाता था कि 'आप कहते हैं मनुष्य दुःख भोगता है, मनुष्य मुक्त होता है तो आखिर यह दुख भोगने वाला तथा दुःख से मुक्त होने वाला कौन है ? तो बुद्ध इसका उत्तर देते हुए कहते थे कि तुम्हारा यह प्रश्न ही गलत है। प्रश्न यों होना चाहिए कि क्या होने से दुःख होता है और उसका उत्तर यह है कि तृष्णा के होने से दुःख होता है। इसी प्रकार तृष्णा किसे होती है ? यह प्रश्न न होकर क्या होने से तृष्णा होती है, यह प्रश्न होना चाहिए; तथा इसका उत्तर है कि वेदना होने से तृष्णा होती है। आदि। किन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने अपने उपदेशों में इस बात का सदैव संकेत किया कि वे अजन्मा अनश्वर सत्ता को भी मानते हैं। इतना अवश्य था कि उन्होंने लोक-कल्याण के लिए आत्मा के अस्तित्व का विवेचन उचित न समझ उसे अव्याकृत कोटि में डाल दिया था।

भगवान् बुद्ध के आत्मा विषयक मत पर यदि सुलझी दृष्टि से विचार किया जाय तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने आत्मा का खण्डन न कर उसके व्यावहारिक पक्ष पर जोर दिया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष एक अन्य ऐसा विषय है जिससे दोनों धर्मों में मतभेद प्रतीत होता है। जैनधर्म में मोक्ष का विशद वर्णन है, किन्तु बौद्धधर्म के अनुसार विज्ञान की सन्तति का निरुद्ध हो जाना निर्वाण है। इसी को परवर्त्ती बौद्ध साहित्य में प्रदीप के बुझ जाने की उपमा दी गयी है। किन्तु दोनों ही धर्मों में मुक्तावस्था या निर्वाणावस्था की प्राप्ति अभीष्ट है। गम्भीरतापूर्वक विचारने पर मोक्ष तथा निर्वाण में भी कोई विरोध नज़र नहीं आता है। बौद्धधर्म की विज्ञान-सन्तति अविद्या एवं संस्कार जन्य होने से संसार में विद्यमान रहती है तथा निर्वाण में इस विज्ञान-सन्तति का पूर्णरूपेण विनाश हो जाता है। जैनधर्म में भी निर्वाणावस्था में आत्मा के कर्मजन्य कलुषित रूप की समाप्ति अभीष्ट है। अतः कर्मबन्ध को तथा विज्ञान-सन्तति को पर्याय मानने से दोनों ही धर्मों में निर्वाण एक जैसा ही है। जहाँ तक आत्मा के शुद्ध रूप की बात है भगवान् बुद्ध उसे तो अव्याकृत कोटि में डाल ही चुके थे।

जैनधर्म में मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र—इन तीनों का एक साथ होना माना गया है। बौद्धधर्म में भी श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। इस अष्टांगिक मार्ग को शील (सम्यग्वाचा, सम्यक्कर्मान्त एवं सम्यग्-आजीविका), समाधि (सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि), तथा प्रज्ञा में (सम्यग्दृष्टि एवं सम्यक्संकल्प) में विभक्त किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र बौद्धधर्म के प्रज्ञा, समाधि एवं शील के अनुरूप हैं। इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ जैनधर्म में मोक्षमार्ग का मूल आधार सम्यग्दर्शन को माना गया है वहीं बौद्धधर्म में शील को प्रथम स्थान दिया गया है तथा शील को ही मोक्ष मार्ग का आधार माना गया है। इसका मुख्य कारण जनसाधारण का ध्यान आत्मा के ऊहापोह से हटाकर सदाचार की ओर आकर्षित करना था।

सारांश यह कि जैनधर्म एवं बौद्धधर्म न केवल श्रमण संस्कृति की दो धाराएँ हैं, अपितु आपस में एक-दूसरे की पूरक भी हैं। जो व्यक्ति आत्मा के नाम पर होने वाले अनाचार से खिन्न होकर आत्मा के अस्तित्व की उपेक्षा कर संसार के दुःखों से शान्ति चाहता है उसे बौद्धधर्म का सहारा लेना चाहिए, किन्तु जो व्यक्ति आत्मा के अस्तित्व पर श्रद्धा रखकर संसार के दुःखों से मुक्ति चाहता है, उसे जैनधर्म में बताया गया मोक्षमार्ग अनुकूल होगा।

पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org